



## मीमांशा दर्शन में आत्मतत्व

□ डॉ० संतोष कुमार पाण्डेय

मीमांसा दर्शन का आत्मविषयक विचार वस्तुवादी एवं बहुवादी है। मीमांसा-शास्त्र की मान्यता है कि वैदिक विध्यात्मक अनुष्ठान से मानव को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। स्वर्ग एवं अपवर्ग की सम्प्राप्ति के सिद्धान्त की संगतता तभी संभव है जब शरीर आदि से भिन्न कर्ता एवं भोक्ता के रूप में एक पृथक् पदार्थ की सत्ता स्वीकार की जाय, जिसे अन्य दर्शनों में आत्मा की संज्ञा दी जाती है। स्वर्ग एवं अपवर्ग की प्राप्ति शरीर को नहीं होती, अपितु अशरीरी आत्मा को होती है।<sup>1</sup> मीमांसासूत्रकार जैमिनि ने आत्मा की यथार्थसत्ता का जैसा कि राधाकृष्णन भी कहते हैं, कोई स्पष्ट विवेचन नहीं किया है, किन्तु इस प्रश्न पर वे वेदान्त द्वारा दी गई युक्तियों को स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं— "Jamini does not offer any detailed proof of the reality of Atman, but seems to accept the arguments of the vedanta on the question".<sup>2</sup> मीमांसा दर्शन में आत्मतत्त्व की स्वीकृति से अभिप्राय केवल जीवात्मा के स्वीकार से है क्योंकि वेद को अपौरुषेय मानने वाले मीमांसक ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते।

आत्मा सम्बन्धी मीमांसा दर्शन का विचार प्रायः न्याय-वैशेषिक आत्मविचार से साम्य रखता है। नैयायिकों के समान मीमांसकों ने भी आत्मा को शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि से पृथक् एक द्रव्य-विशेष माना है, जिसके शरीर में विद्यमान होने से कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ज्ञातृत्व आदि की उत्पत्ति होती है। आत्मा स्वभाव से ही नित्य एवं प्रति शरीरवर्ती एवं विभु है। यद्यपि जैमिनि सूत्रों में आत्मा के अनेकत्व का स्पष्ट संकेत तो नहीं मिलता, फिर भी भिन्न-भिन्न देहों में स्थित होने के कारण आत्मा को अनेक मानता युक्तिसंगत है, क्योंकि आत्मभेद एवं अनेकात्मवाद को स्वीकार करने पर ही धर्म और अधर्म के भेद की कल्पना हो सकती है।

मीमांसकों के अनुसार, जीवात्मा एक द्रव्य है। वेद का उद्घोष है कि यज्ञ के अनन्तर यजमान स्वर्गलोक जाता है— 'यजमानः स्वर्गलोकं याति।' यजमान का शरीर तो मृत्यु के पश्चात् यहीं दग्ध हो जाता है। अतः शरीर तो स्वर्ग नहीं जाता है, फिर जो स्वर्ग जाता है, वह जीवात्मा ही है—

"तत्र प्रत्यक्षमात्मानमौपवर्षाः प्रपेदिरे।

अहं प्रत्ययगम्यत्वात्स्वयूथ्या अपि केचन।<sup>3</sup>  
इसी प्रकार 'वह इस जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त होता है' इस कथन से भी स्पष्ट है कि मुक्त होने वाला शरीर, इन्द्रिय आदि से भिन्न कोई है, जो नित्य है, जिसका नाश नहीं होता, जो परलोक गमन करता है, वही जीवात्मा है। आत्मा में ज्ञान का उदयहोता है, वह जड़ एवं बोधस्वरूप भी है। आत्मा नित्य है। वह कर्ता, भोक्ता है। वह विभु है, क्योंकि वह अहंभाव के रूप में सर्वत्र विद्यमान है। वह 'शुद्ध ज्ञान' स्वरूप है, और देश काल से अपरिच्छिन्न है। यही ज्ञाता है और भिन्न-भिन्न होने से अनेक है। नैयायिकों के 'मानस-प्रत्यक्ष' की भांति मीमांसकों ने आत्मा की प्रत्यक्षगम्यता को स्वीकार किया है— "The vedas speaks of the sacrificer going the heaven after death the body perishes after death, hence the entity that is spoken of as proceeding to heaven must be something other than perishable body, This entity is the soul"<sup>4</sup> 'अहं प्रत्यय' अर्थात् मैं इस प्रकार का ज्ञान शरीर को विषय बनाता है। जैसे 'मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ' इत्यादि। इसीप्रकार 'ज्ञानसमानाधिकरण' से भी आत्मा का पृथक् अस्तित्व

सिद्ध होता है। अर्थात् अपने को ज्ञानी बतलाने वाला, ज्ञान से पृथक् कर्ता आत्मा ही है। यथा, मैं जानता हूँ, इत्यादि। 'अहं प्रत्यय' अर्थात् मैं इस प्रकार का ज्ञान-ज्ञान, इच्छा, सुख-दुःख आदि से युक्त अपने को प्रस्तुत करने वाला आत्मा से भिन्न, अन्य कोई नहीं है— "यजमानत्वमप्यात्मा सक्रियत्वात् प्रपद्यते। न परिस्पन्दः एवैकः क्रिया न कणभोजिवत् ।।" 5 इन्द्रियों में ज्ञान, सुख-दुःख, इच्छा आदि का सम्बन्ध सम्भव नहीं है। इसी प्रकार ज्ञानादि से रहित वस्तु में 'मैं जानता हूँ'— इस प्रकार की प्रतीति भी संभव नहीं है।

कुमारिलभट्ट आत्मा को जड़बोधात्मक या चिदचिद् रूप मानते हैं। आत्मा ज्ञानशक्ति स्वभाव है। चैतन्य जिसके आश्रय में रहता है, उसे आत्मा कहते हैं। ज्ञान, इच्छा, सुख, दुःख, क्रिया आदि आत्मा में स्थित है। न्याय-वैशेषिक मत के विपरीत भट्ट मीमांसक आत्मा में क्रिया के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। क्रिया के दो रूप हैं— स्पन्द एवं परिणाम। आत्मा में स्पन्द (स्थान-परिवर्तन) नहीं होता तथा परिणाम (रूप-परिवर्तन) होता है। परिणामी वस्तु भी भाट्टमत में नित्य होती है। अतः परिणामशील होने पर भी नित्य है। आत्मा में चित् एवं अचित् दो अंश हैं। चिदंश से वह प्रत्येक ज्ञान का अनुभव करता है, और अचित् अंश से वह परिणाम को प्राप्त करता है। सुख, दुःख, इच्छा, प्रयत्नादि, जिन्हें न्याय-वैशेषिक आत्मा के विशेष गुण स्वीकार करते हैं, भाट्टमत में वे आत्मा के अचिदंश के परिणामस्वरूप हैं— "चिदंशेन द्रष्टृत्वं सोऽयमिति प्रत्यभिज्ञा, विषयत्वं च अचिदंशेन। ज्ञानसुखादिरूपेण परिणामित्वम्। स आत्मा अहं प्रत्ययेनैव वेद्यः ।।" 6 वेदान्त अभिमत आत्मा को चैतन्य-स्वरूप न मानकर मीमांसक आत्मा को चैतन्य विशिष्ट ही मानते हैं। अतः आत्मा जड़ एवं बोध विशिष्ट है। प्रभाकर मीमांसक आत्मा में क्रियावत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं।

आत्मा शरीरादि से भिन्न है। स्वानुभवगम्य होने के कारण आत्मा मानसप्रत्यक्षगम्य है।

कुमारिलभट्ट ने श्लोकवार्तिक में आत्मतत्त्व की सिद्धि के लिए "स एष यज्ञायुधी यजमानोऽन्जसा स्वर्गलोकं याति ।।" 8 इस वेदवाक्य को उद्धृत किया है। 'स एष' से प्रत्यक्षतः शरीर का ही बोध होता है किन्तु शरीर के यहीं नष्ट हो जाने पर शरीर यज्ञायुधी आत्मा रूप यजमान स्वर्ग को जाता है, ऐसा कहा गया है— "प्रत्यक्षत्वं च देहस्थं भाक्तमात्मनि कल्पितम्। आत्मनः स्वर्गयानं वा शरीरस्योपचर्यते ।।" 9 अतः स्वर्ग को जाने वाला शरीरादि से अतिरिक्त आत्मा ही है। शरीर को ज्ञाता नहीं माना जा सकता, क्योंकि शरीर में बाल्यादि अवस्थाओं के भेद से अनेकत्व होता है। इसी प्रकार शरीर को चेतन नहीं माना जा सकता क्योंकि ऐसा मानने पर यागों के बोधक वाक्य अप्रमाण हो जायेंगे, क्योंकि शरीरपात के बाद किसी भी भोक्ता का रहना सम्भव नहीं है एवं यागादि के फल इस शरीर के समय अप्राप्त हैं— "शरीरविनिपाताच्च परं नान्यद् यदेष्यते। अदत्तफलइष्ट्यादौ तदा तद्वचनं मृषा ।।" 10 इस प्रकार प्रत्यभिज्ञावान 'मैं' इस ज्ञान के विषयरूप में ज्ञाता (आत्मा) के सिद्ध हो जाने पर शरीर में होने वाले 'मैं' इत्यादि ज्ञान को मिथ्या नहीं कहा जा सकता है। अतः यह तर्कतः उचित नहीं होगा कि 'मैं स्थूल हूँ' इत्यादि प्रतीतियों की अपेक्षा 'मैं ज्ञानी हूँ' इत्यादि प्रतीतियों को मिथ्या माना जाय। इन सभी प्रतीतियों का मुख्य विषय होने के कारण आत्मा की प्रत्यक्षगम्यता स्वतः सिद्ध है। प्रभाकर के मतानुसार आत्मा का प्रत्येक ज्ञान की अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रकाश होता है। यह ज्ञान से भिन्न होकर भी हमें ज्ञान के द्वारा ही बोधगम्य होता है। 'अहं' इस ज्ञान के द्वारा सर्वत्र और सर्वदा इसका बोध होता है। 'त्रिपुटी-प्रत्यक्ष' के आधार पर प्रभाकर ज्ञान के प्रकाश में विषय एवं आत्मा का प्रकाश मानते हैं। प्रभाकर-दर्शन में आत्मा एक अचेतन द्रव्य है जिसमें ज्ञातृत्व, कर्तृत्व एवं सुख-दुःखादि का भोक्तृत्व-गुण विद्यमान है। आत्मा स्वप्रकाश एवं चेतनस्वरूप नहीं है। क्योंकि ऐसा मानने पर प्रगाढ़ निद्रा में भी ज्ञान होता। बोध के आश्रय के रूप में आत्मा जाना जाता है। अर्थात् प्रभाकर के मत में प्रत्येक वस्तुज्ञान में उसी

ज्ञान के द्वारा आत्मा का ज्ञान भी कर्ता के रूप में प्रकाशित होता है। 'मैं' घड़े को जानता हूँ, 'मैं' लेखनी से लिख रहा हूँ' इन समग्र अनुभवों में क्रिया के कर्ता के रूप में आत्मा ही आलोकित हो रहा है। 'मैं' इस रूप में जिसकी प्रतीति हो रही है, वही आत्मा है। 'विषय-चैतन्य' से भिन्न 'आत्मा-चैतन्य' नाम की कोई वस्तु नहीं है। आत्मा चैतन्य का विषयी और विषय दोनों नहीं हो सकता है। आत्मा कर्ता है, भोक्ता है। प्रभाकर के मतानुसार 'मैं' और 'मेरा' ये उक्तियाँ आत्मा के सम्बन्ध में एकमिथ्याविचार की ओर संकेत करती हैं—'स्वयंप्रकाशत्वेन, विषय प्रतीतिगोचरत्वेन।'<sup>11</sup> प्रभाकर के अनुसार आत्मा स्वरूपतः जड़ है। चैतन्य आत्मा का औपाधिक गुण है जो अवस्था विशेष में उत्पन्न होता है। सुषुप्ति एवं मोक्ष की अवस्था में चैतन्य नहीं रहता है।

मीमांसा-दर्शन के दोनों सम्प्रदायों के आत्मविषयक विचार को जानने हेतु उनके ज्ञान विषयक सिद्धान्त को जानना अपरिहार्य है। प्रभाकर का ज्ञान विषय सिद्धान्त 'त्रिपुटी-प्रत्यक्षवाद' है एवं कुमारिलभट्ट का 'ज्ञाततावाद'। प्रभाकरमीमांसा के अनुसार प्रत्येक ज्ञान में ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान रूपी त्रिपुटी का बोध होता है। आत्मा ज्ञाता है, वह किसी भी ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय दोनों नहीं हो सकता। किसी भी क्रिया में कर्ता और कर्म 'कर्तृकर्मविरोध' के नाते कदापि एक नहीं हो सकते हैं। आत्मा यद्यपि जड़ है और उसके बोध हेतु ज्ञान आवश्यक है, किन्तु वह स्वतन्त्र ज्ञान नहीं है। किसी भी वस्तु का ज्ञान होने पर कर्ता के रूप में आत्मा का ज्ञान स्वतः हो जाता है। अतः प्रत्येक ज्ञान में आत्मबोध होता ही है। आत्मा 'अहंप्रत्ययवेद्य' है। प्रभाकर के अनुसार ज्ञान स्वप्रकाश है, उसे अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान के लिए ज्ञानान्तर की कल्पना से 'अनवस्था प्रसंग दोष' आ जाता है। ज्ञान स्वप्रकाश तो है किन्तु नित्य नहीं है। आत्मा का आगन्तुक गुण होने से ज्ञान अनित्य और उत्पत्ति-विनाशशील है। विषय सम्पर्क से आत्मा में ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान का कार्य विषयपदार्थ या

ज्ञेय को प्रकाशित करना है, किन्तु स्वप्रकाशित होने से ज्ञान ज्ञेय को प्रकाशित करते ही स्वयं प्रकाशित भी हो जाता है। साथ ही आत्मा को भी ज्ञाता के रूप में प्रकाशित करता है। जिस प्रकार दीपक का प्रकाश घट-पटादि पदार्थों को, स्वयं को एवं अपने आश्रयभूत दीपक को भी प्रकाशित करता है, उसी प्रकार ज्ञान इन्द्रिय सन्निहित पदार्थ को ज्ञेय रूप में, स्वयं को ज्ञान रूप में, तथा अपने आश्रयभूत आत्मा को ज्ञाता के रूप में प्रकाशित करता है। आत्मा ज्ञान का आश्रय है किन्तु अपनी अभिव्यक्ति के लिए ज्ञान पर निर्भर है। क्योंकि आत्मा पदार्थ के समान जड़ है। इस प्रकार प्रभाकरमीमांसा आत्म एवं विषय दोनों का प्रत्यक्ष स्वीकार करते हैं, किन्तु वे आत्मा को ज्ञान के आश्रय के रूप में ही प्रत्यक्षगम्य मानते हैं, विषयरूप में नहीं, विषयरूप में घटादि बाह्य पदार्थों का ही प्रत्यक्ष स्वीकार करते हैं।

कुमारिलभट्ट के ज्ञाततावाद के अनुसार ज्ञान स्वप्रकाश नहीं होता है और न ही आत्मा को ज्ञाता के रूप में प्रकाशित ही करता है। ज्ञान केवल ज्ञेय विषय को ही प्रकाशित करता है। कुमारिल के अनुसार आत्मा का ज्ञान अनुव्यवसाय में होता है। आत्मा अहं प्रत्ययरूप है, और स्वयं को अपना विषय बनाकर जानता है, आत्मा 'अहं प्रत्ययवेद्य' है। ज्ञान ज्ञेय को ही प्रकाशित करता है। अतः ज्ञाता भी, अपना ज्ञेय बनकर, ज्ञान द्वारा प्रकाशित होता है। कुमारिल के अनुसार प्रत्येक ज्ञान में आत्मा का बोध नहीं होता है। जब हम आत्मा पर विचार करते हैं तब अपना बोध होता है कि 'मैं हूँ' इसे ही 'अहंविति' कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुभव होता है कि 'मैं स्वयं को जानता हूँ।' इस ज्ञान में आत्मा एक साथ ज्ञाता और ज्ञेय दोनों होता है। 'आत्मान विद्धि' यह वैदिक वाक्य तथा 'मैं स्वयं को जानता हूँ' यह लौकिक व्यवहार यह सिद्ध करते हैं कि आत्मा को एक साथ कर्ता और कर्म मानने में कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार मीमांसा के दोनों मत प्रभाकर एवं

मीमांसक आत्मा को नित्य, अनेक, सर्वगत, विभु, व्यापक द्रव्य के रूप में स्वीकार करते हैं जो ज्ञान का आश्रय है। आत्मा ही ज्ञाता, कर्ता एवं भोक्ता है। आत्मा शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से भिन्न है। आत्मा भोक्ता है, शरीर भोगायतन है, इन्द्रियाँ भोग साधन हैं और बाह्य पदार्थ तथा मनोभाव भोग्यविषय हैं। ज्ञान आत्मा का स्वरूप नहीं है, ज्ञान आत्मा का अपृथक् धर्म भी नहीं है। प्रभाकर भी न्याय-वैशेषिक दर्शन के समान आत्मा जड़द्रव्य है जो ज्ञान गुण का आश्रय है, ज्ञान आत्मा का आगन्तुक गुण है— ऐसा स्वीकार करते हैं। कुमारिल आत्मा को जड़बोधात्मक मानते हैं। नैयायिकों की भांति प्रभाकर एवं कुमारिल भी मोक्षावस्था में सुषुप्ति के समान आत्मा में ज्ञान, सुख-दुःखादि की स्थिति स्वीकार नहीं करते हैं, क्योंकि उस अवस्था में आत्मा विशुद्ध द्रव्यरूप में होता है एवं शरीरेन्द्रियादि सम्बन्ध विलय के कारण गुण और क्रिया से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, यद्यपि उसका ज्ञानशक्ति स्वभाव बना रहता है।

\*\*\*\*\*

**संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1. जैमिनि मीमांसासूत्र-01/01/05
2. Radhakrishnan S., Indian Philosophy, Vol.II, P.407-408
3. न्या0मं0, प्र0ख0, पृ0-03
4. Jha, G.N., Purvamimansa in its sources, P.28
5. भट्ट, कुमारिल, मीमांसाश्लोकवार्तिक, आत्मवाद-74
6. काश्मीरक, सदानन्द-अद्वैत ब्रह्मसिद्धि
7. न्या0मं0प्र0ख, पृ0-04
8. शतपथ ब्राह्मण-12/05/218
9. भट्ट, कुमारिल, मीमांसाश्लोकवार्तिक, आत्मवाद-02
10. भट्ट, कुमारिल, मीमांसाश्लोकवार्तिक, आत्मवाद-05
11. प्रकरण पंचिका, पृ0-151।